तू भी अकेली,

मैं भी अकेला।

तुम्हे क्या लगा था कि,

आज भी तुझे बच्चे यूँ ही खोजेंगे..?

तेरे पीछे-पीछे यूँ ही दौड़ेंगे..?

तू भी इठलाती-बलखाती,

खेतो में, मेड़ो पर, झाड़ियो के झुरमुट में,

फूस की फुनगी पर, ढेकी के ढकनों पर,

हुक्के के चिलम और कजरे के डीब्बि पर,

मटकेगी और शहरी बच्चे तेरे पीछे ही दौड़ेंगे..?

अरे, गँवईं बच्चे भी तेरे पीछे नही दौड़ते अब।

तू इतना भी नही समझती,

तूने खुद को उजियार किया हुआ है,

इसी में खुश क्यूँ नही रहती.?

खुद को जला कर, अपनी तपिश से उजियार कर के,

किन राहों को बताना चाहती है.?

उन राहों पर न तो राही रहे, न ही पथिक।

न ही बच्चों में वे शरारते रही,

न ही अधनंगे भागने की जुगत।

अब तो तू भी शहरी हो गयी,

दीखती भी नही, मेरे सुने झोपड़े में।

दीया आज भी जलाता हूँ, किसी पथिक की राह में।

आ गयी न मेरे पास, पुनः दीये की लौ में ही।

मैं जहाँ था, वही हूँ,

आ बैठ मेरे पास, तुझे देखता ही रहूँ।

हाँ, मुझमे समाने की जिद मत करना,

कोई शहरी लॉट दीखे,

उड़ जाना फिर बलखाती हुई।